International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 08-03-2026, Accepted: 08-04-2026, Published: 23-04-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 92-94

भक्ति, नैतिक प्रतिरोध और पिंगल छंद: हरियाणवी रागनी परंपरा में 'किस्सा भगत पूरणमल' का समालोचनात्मक अध्ययन (रागनी 1–8 के संदर्भ में)

आनन्द कुमार आशोधिया
स्वतंत्र शोधकर्ता एवं पूर्व वारंट ऑफिसर, भारतीय वायु सेना, शाहपुर तुर्क, जिला सोनीपत, हरियाणा, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध–पत्र में आनन्द कुमार आशोधिया कृत 'किस्सा भगत पूरणमल' की रागनी 1–8 का साहित्यिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा पिंगल–छंदात्मक दृष्टियों से विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह प्रतिपादित करना है कि पूरणमल की कथा केवल एक पारंपरिक लोक–आख्यान नहीं है, बल्कि यह भक्ति, नैतिक प्रतिरोध, सामाजिक न्याय और आध्यात्मिक पुनर्जन्म की बहुस्तरीय प्रक्रिया को अभिव्यक्त करने वाली एक महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति है। शोध में गुणात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति अपनाई गई है तथा निकट–पाठन, सांस्कृतिक अध्ययन, प्रतीकात्मक विश्लेषण और पिंगल–आधारित छंद परीक्षण का उपयोग किया गया है।
रागनी 1–3 में पूरणमल के दुःख, परित्याग, कुएँ में गिराए जाने और गुरु–परंपरा के माध्यम से उद्धार का वर्णन है, जो करुणा और आध्यात्मिक जागरण का आधार निर्मित करता है। रागनी 4–5 में भिक्षाटन और लोक–संवाद के माध्यम से पूरणमल एक नैतिक प्रतिरोधी व्यक्तित्व के रूप में उभरता है। रागनी 6–8 में उसका संतत्व स्थापित होता है और वह माया, नश्वरता, नाम–स्मरण तथा लोक–नैतिकता जैसे विषयों पर विचार प्रस्तुत करता है। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि हरियाणवी रागनी परंपरा में छंद–विधान केवल लयात्मकता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह भाव और विचार की अभिव्यक्ति का सक्रिय माध्यम है। मात्रा–संतुलन, यति–विन्यास, तुकांत और अनुप्रास का प्रभावी प्रयोग इस कृति को श्रव्य और मंचीय दृष्टि से अत्यंत प्रभावशाली बनाता है।
यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि 'किस्सा भगत पूरणमल' हरियाणवी लोक–साहित्य में भक्ति और नैतिक प्रतिरोध की एक विशिष्ट धारा का प्रतिनिधित्व करता है तथा समकालीन साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्शों में भी इसकी महत्त्वपूर्ण प्रासंगिकता है।

मूल शब्द: हरियाणवी रागनी परंपरा, भगत पूरणमल, लोक–भक्ति, नैतिक प्रतिरोध, पिंगल छंदशास्त्र, लोक–आख्यान, सांस्कृतिक प्रतीक, संत परंपरा

भारतीय लोक–साहित्य की परंपरा अत्यंत समृद्ध और बहुआयामी रही है। लोक–कथाएँ, लोक–गीत, गाथाएँ, रागनियाँ और सांग केवल मनोरंजन के साधन नहीं रहे, बल्कि वे जन–जीवन, सामुदायिक स्मृति, सामाजिक संबंधों और सांस्कृतिक मूल्यों के जीवंत दस्तावेज भी रहे हैं। उत्तर भारत, विशेषतः हरियाणा में विकसित रागनी परंपरा इसी व्यापक लोक–साहित्यिक धारा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हरियाणवी रागनी की विशेषता यह है कि उसमें काव्य, संगीत, अभिनय और संवादात्मकता का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यही कारण है कि रागनी केवल पढ़ी नहीं जाती, बल्कि गाई, सुनी और मंचित भी की जाती है।
'किस्सा भगत पूरणमल' इसी लोक–परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। पूरणमल की कथा भारतीय लोक–स्मृति में लंबे समय से विद्यमान रही है और पंजाब, राजस्थान तथा हरियाणा के लोक–क्षेत्रों में इसके अनेक संस्करण मिलते हैं। हरियाणवी रागनी परंपरा में यह कथा विशेष रूप से इसलिए महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यहाँ पूरणमल केवल एक पीड़ित नायक नहीं, बल्कि एक ऐसे संत–पुरुष के रूप में उभरता है जो व्यक्तिगत दुःख को लोक–मंगल और आध्यात्मिक चेतना में रूपांतरित करता है।
पूरणमल की कथा में कुएँ में गिराया जाना, गुरु द्वारा उद्धार, भिक्षाटन, समाज से संवाद, नैतिक प्रतिरोध और अंततः संतत्व की प्राप्ति जैसे प्रसंग आते हैं। ये प्रसंग केवल कथात्मक घटनाएँ नहीं हैं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतीकों के रूप में कार्य करते हैं। कुआँ सामाजिक बहिष्कार और अस्तित्वगत संकट का प्रतीक है; भिक्षा समाज की नैतिकता की परीक्षा का माध्यम है; गुरु–शिष्य संबंध आध्यात्मिक पुनर्जन्म का संकेत है; और संतत्व सामाजिक पुनर्स्वीकृति तथा नैतिक विजय का प्रतीक है।
समकालीन संदर्भ में भी यह कथा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आज का समाज भी अन्याय, नैतिक पतन, स्वार्थ, असमानता और आध्यात्मिक रिक्तता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसे समय में पूरणमल की कथा यह संकेत देती है कि पीड़ा को केवल विनाशकारी अनुभव न मानकर उसे आत्मबोध और सामाजिक पुनर्निर्माण के अवसर में बदला जा सकता है। इस प्रकार यह अध्ययन न केवल लोक–साहित्य के इतिहास को समझने का प्रयास है, बल्कि समकालीन सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों से उसका संवाद भी स्थापित करता है।
प्रस्तुत अध्ययन को लेखक के पूर्ववर्ती लोक–आख्यान एवं हरियाणवी रागनी परंपरा संबंधी अनुसंधानों की निरंतरता में भी देखा जा सकता है। पूर्व में आशोधिया, आनन्द कुमार द्वारा "हीर–राँझा रागणी संग्रह" तथा हीर–राँझा की हरियाणवी रागणी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण के अंतर्गत रागनी 1–7, 8–16, 17–22 तथा 23–28 का पिंगल, सांस्कृतिक और लोक–आख्यानात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा चुका है। उन अध्ययनों में प्रेम–प्रधान लोकगाथा के रूप में हीर–राँझा के कथानक, लोक–भाषा, छंद–विधान और सांस्कृतिक प्रतीकों का परीक्षण किया गया था। वर्तमान शोध उसी विमर्श को भगत पूरणमल की रागनियों के संदर्भ में आगे बढ़ाता है, जहाँ प्रेम और विरह के स्थान पर भक्ति, नैतिक प्रतिरोध, संत–परंपरा और आध्यात्मिक पुनर्संरचना के आयाम अधिक प्रमुख रूप में उभरकर सामने आते हैं। इस प्रकार यह अध्ययन न केवल लेखक के पूर्ववर्ती अनुसंधानों का विस्तार है, बल्कि हरियाणवी लोक–रागनी परंपरा के भीतर विषयगत विविधता और वैचारिक गहराई को भी रेखांकित करता है।

साहित्य समीक्षा
हरियाणवी लोक–साहित्य और रागनी परंपरा पर अनेक विद्वानों ने कार्य किया है, किंतु 'किस्सा भगत पूरणमल' जैसी कृतियों का बहुआयामी अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है। लोक–साहित्य के संबंध में हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है कि लोक–काव्य सामूहिक

चेतना का कलात्मक रूप होता है। उनके अनुसार लोक–रचनाओं में केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज की सांस्कृतिक स्मृति और नैतिक आदर्श भी सुरक्षित रहते हैं। यह दृष्टिकोण पूरणमल की कथा पर पूरी तरह लागू होता है क्योंकि इसमें लोक–जीवन के अनुभव, सामाजिक अन्याय और आध्यात्मिक समाधान एक साथ उपस्थित हैं।

रामविलास शर्मा ने लोक–साहित्य को वर्गीय और सामाजिक संघर्षों के संदर्भ में देखा है। उनके अनुसार लोक–काव्य में प्रतिरोध की एक अंतर्धारा होती है, जो सामाजिक संरचना के अंतर्विरोधों को उजागर करती है। पूरणमल की कथा में भी यही प्रतिरोध दिखाई देता है। वह सत्ता, पारिवारिक षड्यंत्र और सामाजिक उपेक्षा का शिकार है, किंतु वह हिंसा या प्रतिशोध के मार्ग पर नहीं चलता। उसका प्रतिरोध नैतिक और आध्यात्मिक है।

भक्ति–साहित्य के संदर्भ में नामवर सिंह और मैनेजर पांडेय के विचार महत्त्वपूर्ण हैं। नामवर सिंह भक्ति आंदोलन को आध्यात्मिक लोकतंत्र की स्थापना का माध्यम मानते हैं। उनके अनुसार भक्ति केवल ईश्वर–समर्पण नहीं, बल्कि सामाजिक समानता और नैतिकता की स्थापना का भी माध्यम है। पूरणमल की कथा में यह तत्व स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। वह समाज के विभिन्न वर्गों के बीच जाकर संवाद करता है और उन्हें धर्म, दान, दया और करुणा का महत्व समझाता है।

आशोधिया, आनन्द कुमार के पूर्ववर्ती अध्ययनों में हरियाणवी लोक–रागनी परंपरा का विश्लेषण विशेष रूप से "हीर–राँझा" के संदर्भ में किया गया है। "हीर–राँझा रागणी संग्रह" में लोक–भाषा, कथात्मक संरचना, संवादात्मकता तथा प्रदर्शनात्मकता के विविध आयामों का विश्लेषण प्राप्त होता है, जबकि रागनी 1–7, 8–16 तथा 17–22 पर आधारित शोध–पत्रों में पिंगल, मात्रा–विन्यास, तुकांत–योजना, सांस्कृतिक प्रतीकों तथा लोक–नैतिकता का विस्तृत परीक्षण किया गया है। रागनी 23–28 पर केंद्रित अध्ययन इस विमर्श को और आगे बढ़ाते हुए लोक–आख्यान के अंतिम चरणों में विकसित दार्शनिक चेतना, सांस्कृतिक पुनर्संरचना और भावात्मक उत्कर्ष पर बल देता है। वर्तमान शोध इन पूर्ववर्ती अध्ययनों से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें प्रेम–प्रधान लोकगाथा के स्थान पर भक्ति–प्रधान लोक–संत आख्यान का विश्लेषण किया गया है। परिणामतः यह अध्ययन हरियाणवी रागनी परंपरा के भीतर निहित विषयगत विविधता, सांस्कृतिक जटिलता और वैचारिक विस्तार को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करता है।

हरियाणवी सांग और रागनी परंपरा पर डॉ. जयभगवान गोयल ने विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार रागनी एक प्रदर्शनात्मक विधा है जिसमें गीत, संवाद, अभिनय और लय का संयुक्त प्रभाव होता है। पूरणमल की रागनियों में यह प्रदर्शनात्मकता विशेष रूप से दिखाई देती है। "कौण कुएँ में कर्राहवै सै" जैसे संवाद केवल पाठ नहीं, बल्कि मंचीय प्रस्तुति के लिए उपयुक्त संरचनाएँ हैं।

पिंगल और छंद के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पिंगलाचार्य और आधुनिक छंदविदों के सिद्धांत इस अध्ययन के लिए आधारभूत हैं। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार छंद भावों की अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाता है। हरियाणवी रागनी में छंद का प्रयोग केवल शास्त्रीय अनुशासन के लिए नहीं, बल्कि गायन, स्मरण और प्रस्तुति की सुविधा के लिए भी किया जाता है।

इस प्रकार उपलब्ध साहित्य यह स्पष्ट करता है कि 'किस्सा भगत पूरणमल' का अध्ययन केवल लोक–कथा के रूप में नहीं, बल्कि भक्ति, प्रतिरोध, सांस्कृतिक प्रतीकात्मकता और छंद–विधान के संयुक्त परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। यही इस शोध की विशिष्टता भी है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन गुणात्मक और व्याख्यात्मक अनुसंधान–पद्धति पर आधारित है। इसमें मुख्यतः निकट–पाठन, सांस्कृतिक विश्लेषण, तुलनात्मक अध्ययन तथा पिंगल–आधारित छंद–परीक्षण का उपयोग किया गया है। अध्ययन का प्राथमिक स्रोत आनन्द कुमार आशोधिया कृत 'किस्सा भगत पूरणमल' है, जिसमें संकलित रागनी 1–8 को मूल पाठ के रूप में ग्रहण किया गया है।

निकट–पाठन के अंतर्गत प्रत्येक रागनी की कथात्मक संरचना, प्रतीकों, संवादों, भावों और वैचारिक संकेतों का विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त लोक–साहित्य, भक्ति–साहित्य और छंदशास्त्र से संबंधित पुस्तकों और शोध–पत्रों को द्वितीयक स्रोत के रूप में उपयोग किया गया है।

छंदात्मक विश्लेषण के लिए मात्रा–संतुलन, यति, तुकांत, अनुप्रास और ध्वनि–संरचना को आधार बनाया गया है। साथ ही यह भी देखा गया है कि किस प्रकार शास्त्रीय पिंगल के नियमों को लोक–रागनी की आवश्यकताओं के अनुरूप ढाला गया है। सांस्कृतिक अध्ययन के अंतर्गत कुआँ, भिक्षा, गुरु, संतत्व और नाम–स्मरण जैसे प्रतीकों का अर्थ–विश्लेषण किया गया है।

यह अध्ययन केवल पाठ के अर्थ तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रदर्शनात्मक आयामों को भी समाहित करता है।

कथात्मक एवं साहित्यिक विश्लेषण

रागनी 1–3 में पूरणमल की त्रासदी, पीड़ा और आध्यात्मिक जागरण की प्रक्रिया दिखाई देती है। कुएँ में पड़े हुए पूरण का करुण स्वर "मैं एक बिचारा दुःख का मारया" उसे केवल एक पात्र नहीं रहने देता, बल्कि वह लोक–समाज के हर उस व्यक्ति का प्रतिनिधि बन जाता है जो अन्याय और उपेक्षा का शिकार है। कुएँ का प्रसंग कथा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के अंधकार का प्रतीक है। पूरणमल का उद्धार केवल शारीरिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक भी है। गुरु गोरखनाथ का प्रवेश कथा में आशा, ज्ञान और पुनर्जन्म का संकेत देता है।

रागनी 4–5 में पूरणमल का स्वर बदलता है। अब वह करुणा का पात्र नहीं, बल्कि लोक–समाज का मार्गदर्शक बन जाता है। भिक्षाटन के दौरान उसका संवाद केवल अन्न माँगने का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक नैतिकता की परीक्षा बन जाता है। "दाता होकै धरम तै चूकै" जैसी पंक्तियाँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि भक्ति केवल पूजा–पाठ नहीं, बल्कि मनुष्य के व्यवहार और सामाजिक उत्तरदायित्व से भी जुड़ी हुई है।

रागनी 6–8 में पूरणमल का संतत्व पूर्ण रूप से स्थापित हो जाता है। वह समाज को यह बताता है कि संसार नश्वर है, माया अस्थायी है और केवल नाम–स्मरण ही स्थायी है। यहाँ कथा व्यक्तिगत दुःख से आगे बढ़कर दार्शनिक विमर्श का रूप ले लेती है। पूरणमल का स्वर उपदेशात्मक होने पर भी कठोर नहीं है; उसमें करुणा, अनुभव और लोक–ज्ञान का संतुलित समन्वय दिखाई देता है।

साहित्यिक दृष्टि से इन रागनियों में संवादात्मकता, पुनरावृत्ति, प्रतीकात्मकता और लोकभाषा का अत्यंत प्रभावी प्रयोग हुआ है। कुआँ, भिक्षा, गुरु, नाम और माया जैसे प्रतीक कथ्य को गहराई प्रदान करते हैं। पुनरावृत्ति और तुकांत लयात्मकता को बढ़ाते हैं तथा श्रोता के मन में भावों की स्थायी छाप छोड़ते हैं। लोकभाषा का सहज और जीवंत प्रयोग इन रागनियों को व्यापक जन–समुदाय से जोड़ता है।

पिंगल एवं छंदात्मक विश्लेषण

हरियाणवी रागनी परंपरा में छंद–विधान का अत्यंत महत्त्व है। रागनी केवल कथ्य के कारण प्रभावशाली नहीं होती, बल्कि उसकी लय, गति, तुकांत और ध्वनि–संरचना भी उसे स्मरणीय और प्रस्तुति–योग्य बनाती है। 'किस्सा भगत पूरणमल' की रागनी 1–8 में मात्रा–संतुलन, यति–विन्यास और तुकांत योजना का संतुलित प्रयोग दिखाई देता है।

अनेक रागनियों में 22–28 मात्राओं के बीच संतुलित विन्यास मिलता है। इससे एक ऐसी लय उत्पन्न होती है जो गायन के लिए अनुकूल है। प्रारंभिक रागनियों में करुण रस के कारण दीर्घ मात्राओं की प्रधानता दिखाई देती है, जबकि मध्यवर्ती रागनियों में लघु मात्राओं की वृद्धि से गति और संवादात्मकता बढ़ जाती है। अंतिम रागनियों में संतुलित और गंभीर लय का विकास होता है, जो दार्शनिक चिंतन के लिए उपयुक्त है।

यति का प्रयोग भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। मध्य–यति कथ्य को दो खंडों में विभाजित कर भाव और विचार को स्पष्ट करती है। तुकांत योजना में "डोल–बोल–खोल", "काया–माया–छाया", "बारम्बार–डार" जैसी ध्वनियाँ न केवल श्रव्य सौंदर्य उत्पन्न करती हैं, बल्कि अर्थ की एकता भी निर्मित करती हैं। अनुप्रास, पुनरुक्ति और अंत्यानुप्रास जैसे ध्वनि–अलंकार रागनियों की लयात्मकता को और सुदृढ़ करते हैं।

छंद–विधान के संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि यहाँ शास्त्रीय पिंगल के नियमों का कठोर अनुकरण नहीं किया गया है। लोक–रागनी की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए नियमों को लचीले रूप में अपनाया गया है। यही कारण है कि ये रागनियाँ मंचीय प्रस्तुति, स्मरण और गायन के लिए अत्यंत उपयुक्त बन जाती हैं।

चर्चा

'किस्सा भगत पूरणमल' की रागनी 1–8 का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि हरियाणवी लोक–साहित्य में भक्ति केवल आध्यात्मिक साधना नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिरोध और नैतिक पुनर्संरचना का माध्यम भी है। पूरणमल की यात्रा इस बात का प्रमाण है कि पीड़ा और अन्याय मनुष्य को केवल तोड़ते नहीं, बल्कि उसे अधिक गहरे आत्मबोध की ओर भी ले जा सकते हैं।

यह कथा उस लोक–दृष्टि को व्यक्त करती है जिसमें संतत्व जन्म से नहीं, बल्कि अनुभव, पीड़ा और आत्मबोध से प्राप्त होता है। पूरणमल राजपुत्र होते हुए भी संत इसलिए बनता है क्योंकि वह अपने दुःख को समाज की पीड़ा से जोड़ देता है। वह अपने अनुभवों के आधार पर लोक–समाज को धर्म, दया, करुणा और नैतिकता का संदेश देता है।

इस अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि लोक–साहित्य को केवल सरल और मनोरंजनात्मक साहित्य मानना उचित नहीं है। रागनी जैसी विधाएँ गहन दार्शनिक, सांस्कृतिक और नैतिक विमर्शों को भी अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं। पूरणमल की कथा में भक्ति, प्रतिरोध, संतत्व, लोक–न्याय और आध्यात्मिकता जैसे तत्वों का समन्वय दिखाई देता है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यह कथा प्रेम–प्रधान लोक–गाथाओं से भिन्न है। यहाँ नायक का संघर्ष प्रेम या सत्ता के लिए नहीं, बल्कि सत्य, धर्म और आत्मबोध के लिए है। इस प्रकार यह रचना लोक–साहित्य में नैतिक प्रतिरोध की एक विशिष्ट धारा का प्रतिनिधित्व करती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन यह स्थापित करता है कि 'किस्सा भगत पूरणमल' हरियाणवी रागनी परंपरा की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है। रागनी 1–8 में निहित कथात्मक संरचना, प्रतीकात्मकता, भक्ति–दृष्टि, नैतिक प्रतिरोध और छंदात्मक परिष्कार इसे केवल एक लोक–कथा न रहने देकर एक गंभीर साहित्यिक और सांस्कृतिक दस्तावेज बना देते हैं।

पूरणमल की यात्रा व्यक्तिगत दुःख से सामाजिक चेतना और आध्यात्मिक उत्कर्ष तक की यात्रा है। कुएँ से निकलकर संत बनने तक का उसका मार्ग इस बात का प्रतीक है कि मनुष्य अपने सबसे कठिन अनुभवों को भी आत्मबोध और लोक–मंगल में बदल सकता है। यही इस कथा का सबसे बड़ा नैतिक और दार्शनिक संदेश है।

छंदात्मक दृष्टि से भी यह कृति उल्लेखनीय है क्योंकि इसमें पिंगल–आधारित मात्रा–विन्यास, यति, तुकांत और ध्वनि–संरचना का अत्यंत प्रभावी उपयोग हुआ है। यह रागनियाँ लोक–परंपरा और शास्त्रीय अनुशासन के बीच संतुलन स्थापित करती हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि 'किस्सा भगत पूरणमल' हरियाणवी लोक–साहित्य में भक्ति और नैतिक प्रतिरोध की एक विशिष्ट धारा का प्रतिनिधित्व करता है। यह कृति समकालीन साहित्यिक और सांस्कृतिक विमर्शों में भी प्रासंगिक है तथा आगे के शोध के लिए अनेक संभावनाएँ प्रस्तुत करती है।

संदर्भ सूची

1. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2025). किस्सा भगत पूरणमल: हरियाणवी लोक रागनी संग्रह–समीक्षा सहित. एसजैन पब्लिकेशन.
2. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2025). हीर–राँझा रागणी संग्रह. एसजैन पब्लिकेशन।
3. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2026). हीर–राँझा की हरियाणवी रागणी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण (रागणी 1–7 के संदर्भ में). The Academic, 4(3). पृ. 2261–2265. https://doi.org/10.5281/zenodo.19542794
4. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2026). हीर–राँझा की हरियाणवी रागणी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण (रागणी 8–16 के संदर्भ में). Shodhpatra: International Journal of Science and Humanities, 3(4). पृ.154–159. https: / / www-shodhpatra org / papers / volume–3 / issue–4 / spijsh45689 /
5. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2026). हीर–राँझा की हरियाणवी रागणी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण (रागणी 17–22 के संदर्भ में). The Academic, 4(4). [प्रकाशनार्थ प्रेषित पांडुलिपि, ।
6. आशोधिया, आनन्द कुमार. (2026). हीर–राँझा की हरियाणवी रागणी परंपरा: पिंगल शास्त्र के आलोक में एक सांस्कृतिक विश्लेषण (रागणी 23–28 के संदर्भ में). Research Review International Journal of Multidisciplinary. [प्रकाशनार्थ प्रेषित पांडुलिपि, ।
7. बाउमन, रिचर्ड. (1977). वर्बल आर्ट ऐज़ परफॉर्मेंस. वेवलैंड प्रेस.
8. ब्लैकबर्न, स्टुअर्ट एच. (1989). ओरल एपिक्स इन इंडिया. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
9. डंडेस, एलन. (1980). इंटरप्रेटिंग फोकलोर. इंडियाना यूनिवर्सिटी प्रेस.
10. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (1990). कबीर. राजकमल प्रकाशन.
11. इलियाड, मिर्चिया. (1958). द सेक्रेड एंड द प्रोफेन: द नेचर ऑफ रिलिजन. हारकोर्ट.
12. फिनिगन, रूथ. (2012). ओरल लिटरेचर इन अफ्रीका. ओपन बुक पब्लिशर्स.
13. गीर्त्ज़, क्लिफर्ड. (1973). द इंटरप्रिटेशन ऑफ कल्चर्स. बेसिक बुक्स.
14. कुमार, निर्मल. (2000). भक्ति आंदोलन और साहित्य: परंपरा का पुनर्पाठ. साहित्य अकादेमी.
15. पांडेय, मैनेजर. (2001). साहित्य और समाज. वाणी प्रकाशन.
16. रामानुजन, ए. के. (1999). फोकटेल्स फ्रॉम इंडिया: ए सिलेक्शन ऑफ ओरल टेल्स फ्रॉम ट्वेंटी–टू लैंग्वेजेज. पैंथियॉन बुक्स.
17. शुक्ल, रामचंद्र. (2002). हिंदी साहित्य का इतिहास. लोकभारती प्रकाशन.
18. सिंह, नामवर. (2010). कविता के नए प्रतिमान. राजकमल प्रकाशन.
19. स्नेल, रुपर्ट. (1991). द हिंदी क्लासिकल ट्रेडिशन: ए ब्रज भाषा रीडर. स्कूल ऑफ ओरिएंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़.
20. विलियम्स, रेमंड. (1977). मार्क्सवाद और साहित्य. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.